

[2025] 2 एस. सी. आर 1806 : 2025 आई एन एस सी 331

हिमाचल प्रदेश राज्य

बनाम

राजेश कुमार @ मुन्नु

(आपराधिक अपील संख्या 2097/2014)

20 फरवरी 2025

[सूर्यकान्त* और नॉगमीकापम कोटिस्वर सिंह, जे. जे.]

विचारणीय मुद्दा

मामला उच्च न्यायालय द्वारा आईपीसी की धारा 376 और 452 के तहत आरोपियों को बरी करने के आदेश की सत्यता से संबंधित है।

शीर्ष नोट[†]

दंड संहिता, 1860 - धारा 376 और 452 - बलात्कार - अभियोक्ता द्वारा चिकित्सा परीक्षण की अनुमति न देना - एफआईआर दर्ज करने में देरी - ट्रायल कोर्ट ने अभियुक्त- प्रतिवादी को अभियोक्ता के साथ जबरन यौन संबंध बनाने के लिए दोषी ठहराया, हालांकि, अभियोजन मामले में स्पष्ट खामियों के कारण उच्च न्यायालय ने उसे बरी कर दिया - हस्तक्षेप:

निर्णय: हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी - अभियोक्ता की मां ने पक्षद्रोही घोषित किया - अभियोक्ता के पिता ने टालमटोल वाले बयान दिए और मामले की रिपोर्ट करने में देरी की व्याख्या करने में विफल रहे - एफ आई आर दर्ज करने में अस्पष्टीकृत देरी को आमतौर पर अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक माना जाता है - तथ्यों के आधार पर, देरी को कभी स्वीकार नहीं किया गया और इस तरह की चूक का आवश्यक लाभ अभियुक्त को मिलना चाहिए - कथित बलात्कार पीड़िता द्वारा मेडिकल जांच की अनुमति न देना उनके खिलाफ नकारात्मक निष्कर्ष निकालता है - अभियोक्ता और उसके माता-पिता ने खुद मेडिकल जांच के दौरान मेडिकल स्टाफ के साथ कभी भी पूरी तरह से सहयोग नहीं किया, जिससे घटनाओं के उनके संस्करण की विश्वसनीयता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा - इसके अलावा, शिकायतकर्ताओं द्वारा अधिकारियों को दी गई सहायता की पूर्ण कमी के लिए कोई उचित कारण नहीं बताया जा सकता है, अदालत के समक्ष उनके विरोधाभासी रुख के अलावा - साथ ही, उच्च न्यायालय का अपरिवर्तनीय निष्कर्ष कि अभियोक्ता मानसिक रूप से

* लेखक

विक्षिप्त नहीं थी यदि यह बात कायम नहीं रह सकती, तो केवल तभी बरी करने के फैसले में हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है - तथ्यों के आधार पर, उच्च न्यायालय ने पूरे साक्ष्य की सूक्ष्म जांच की और फिर दृढ़ता से यह राय दी कि अभियुक्त को संदेह का लाभ मिलना चाहिए। [अनुच्छेद 7-10, 12, 13]

उद्धृत न्यायनिर्णय

रामदास बनाम महाराष्ट्र राज्य (2007) 2 एससीसी 170; परमिंदर कौर बनाम पंजाब राज्य [2020] 6 एससीआर 508; (2020) 8 एससीसी 811; फतेह चंद बनाम हरियाणा राज्य (2009) 15 एससीसी 543; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम छोटे लाल [2011] 1 एससीआर 406; (2011) 2 एससीसी 550; यौन अपराधों के जवाब में आपराधिक न्याय प्रणाली का आकलन, (2020) 18 एससीसी 540; डोला बनाम ओडिशा राज्य (2018) 18 एससीसी 695; शाम सुंदर बनाम पूरन [1990] 1 सप्प. एससीआर 662; (1990) 4 एससीसी 731; रमणीकलाल गोकलदास बनाम गुजरात राज्य [1976] 1 एससीआर 251; (1976) 1 एससीसी 6; गोसु जयरामी रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [2011] 9 एससीआर 503; (2011) 11 एससीसी 766; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम धर्मेन्द्र सिंह [1999] 3 सप्प. एससीआर 52; (1999) 8 एससीसी 325 - संदर्भित।

अधिनियमों की सूची

दंड संहिता, 1860

प्रमुख शब्दों की सूची

बलात्कार; जबरन यौन संबंध; अभियोजन पक्ष की ओर से चिकित्सा जांच में सहयोग न करना; अभियोजन मामले में स्पष्ट खामियां; गवाह का पक्षद्रोही होना; अभियोजन पक्ष के गवाह द्वारा गोलमोल बयान; एफआईआर दर्ज करने में देरी; अभियोजन मामले के लिए घातक अस्पष्ट देरी; चिकित्सा-कानूनी प्रमाण पत्र; अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त को चूक का लाभ; बलात्कार पीड़िता द्वारा चिकित्सा जांच की अनुमति न देना; साक्ष्य को पूरी तरह से गलत तरीके से पढ़ना; बरी करने के वारंट के फैसले में हस्तक्षेप; अभियोजन पक्ष की ओर से मानसिक रूप से अस्वस्थ न होना।

मामला उत्पन्न हुआ

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 2097/2014, हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय शिमला के सीआरएलए संख्या 8/2009 के दिनांक 01.03.2012 के निर्णय और आदेश से

पक्षकारों की उपस्थिति

अपीलकर्ता के वकील:

विक्रान्त नारायण वासुदेव, सार्थक चिल्लर, रोहित लोचाव

प्रत्यर्थी के लिए वकील:

जोगी स्कारिया, श्रीमती बीना विक्टर, सुश्री एम. प्रिया, अश्विनी कुमार सोनी

उच्चतम न्यायालय का निर्णय / आदेश

फैसला

सूर्यकान्त, न्यायाधीश

1. यह आपराधिक अपील हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा दिनांक 01.03.2012 को पारित उस विवादित निर्णय के विरुद्ध है, जिसके तहत प्रतिवादी द्वारा दायर आपराधिक अपील को स्वीकार कर लिया गया था। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में, "आईपीसी") की धारा 376 और 452 के तहत बरी करते हुए, 02.01.2009 के ट्रायल कोर्ट के उस निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया है, जिसमें प्रतिवादी को उपरोक्त अपराधों के लिए दोषी ठहराते हुए 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी।
2. हमने राज्य के विद्वान अधिवक्ता को विस्तार से सुना है। अभिलेख का अवलोकन किया गया है।
3. अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि 13.08.2007 को, अभियोक्ता (पीडब्लू-10) ने अपने पिता के माध्यम से पुलिस स्टेशन सदर हमीरपुर में आरोपी-प्रतिवादी के खिलाफ आईपीसी की धारा 452 और 376 के तहत एफआईआर संख्या 346/2007 दर्ज कराई। इसमें यह आरोप लगाया गया था कि जब उसके माता-पिता (पीडब्लू-8 और पीडब्लू-9) दोपहर के आसपास दवाइयां खरीदने के लिए अस्पताल गए थे, तो प्रतिवादी उसके घर के बरामदे में आया और माचिस मांगी। उसे अकेला पाकर, आरोपी ने कथित तौर पर उसे हाथ से पकड़ा और उसे कमरे के अंदर ले गया। इसके बाद, उसने उसके साथ जबरन यौन संबंध बनाए। यह

घटना अभियोक्ता ने अपने माता-पिता को उनके लौटने पर सुनाई, जिन्होंने बाद में एफआईआर दर्ज कराई।

4. अभियोक्ता का क्षेत्रीय अस्पताल, हमीरपुर में डॉ. सुनीता गलोधा (पीडब्लू-7) द्वारा चिकित्सीय परीक्षण किया गया, जहाँ उसे मानसिक रूप से विक्षिप्त पाया गया क्योंकि उसने चिकित्सीय परीक्षण में सहयोग नहीं किया। चूँकि यौन संबंध बनाने की पुष्टि नहीं हो सकी, अभियोक्ता को आगे टांडा (धर्मशाला) स्थित आरपीएमसी अस्पताल में स्त्री रोग विशेषज्ञ और मनोचिकित्सक की सलाह के लिए भेजा गया। हालाँकि, अभियोक्ता के पिता ने चिकित्सीय परीक्षण की अनुमति नहीं दी। फिर भी, पुलिस द्वारा एकत्रित प्रारंभिक योनि स्वेब को चिकित्सीय विश्लेषण के लिए फॉरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला भेज दिया गया।
5. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य, जिसमें 14 गवाह शामिल थे, के परीक्षण तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के तहत आरोपी के बयान के आधार पर ट्रायल कोर्ट ने उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 452 और 376 के तहत दोषी ठहराया; तथा उसे आवश्यक जुर्माने के अलावा 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई।
6. इसके विरुद्ध, प्रतिवादी ने उच्च न्यायालय में अपील दायर की, जिसे आक्षेपित निर्णय द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के मामले में कुछ स्पष्ट कमियों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है, जिन्हें हमारे समक्ष उपस्थित विद्वान सरकारी वकील भी संतोषजनक ढंग से उचित ठहराने में असमर्थ हैं। हम ऐसा नीचे दिए गए कारणों से कह रहे हैं।
7. वर्तमान मामला ऐसा है जहाँ अभियोजन पक्ष की माँ (पीडब्लू-9) गवाह के कठघरे में आई और दुर्भाग्य से अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया। उन्होंने इस बात से पूरी तरह इनकार किया कि एफआईआर में वर्णित घटना जैसी कोई घटना कभी घटी ही नहीं थी। तदनुसार, उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया और लोक अभियोजक द्वारा उनसे जिरह की गई। बेशक, उनकी जिरह से कोई ठोस सबूत नहीं निकल सका।
8. अभियोक्ता (पीडब्लू-8) के पिता भी गवाह के कठघरे में आए और यह एक स्वीकृत तथ्य है कि उन्होंने भी गोलमोल बयान दिए, जो मोटे तौर पर मुकदमे से पहले की घटनाओं के वर्णन तक ही सीमित थे। इस मोड़ पर हम यह नोट कर सकते हैं कि उनका बयान मामले की रिपोर्ट करने और एफआईआर दर्ज करने में देरी की व्याख्या करने में विफल रहा है। जबकि उन्होंने प्रस्तुत किया कि उन्होंने कथित घटना की सूचना पुलिस को मिलते ही दी, हम यह नोट करने के लिए विवश हैं कि इस तरह का दावा बहुत अधिक विश्वास पैदा नहीं करता है। हम ऐसा ग्राम पंचायत की प्रधान निर्मला देवी (पीडब्लू-1) के बयान को ध्यान में रखते हुए

कह रहे हैं, जिन्होंने केवल यह गवाही दी कि अभियोक्ता के पिता घटना के तीन दिन बाद, यानी 13.08.2007 को उनके घर आए और उन्हें घटना के बारे में बताया। हालाँकि यह एक सामान्य नियम है कि प्राथमिकी दर्ज करने में हुई अस्पष्ट देरी को आमतौर पर अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक माना जाता है,¹ लेकिन हम देखते हैं कि इस मामले में देरी को कभी स्वीकार ही नहीं किया गया, बल्कि उसे स्पष्ट करना तो दूर की बात है। इसलिए, हमारी सुविचारित राय है कि इस चूक का आवश्यक लाभ अभियुक्त-प्रतिवादी को मिलना चाहिए।

9. अभिलेख में उपलब्ध अन्य महत्वपूर्ण साक्ष्यों में हमीरपुर क्षेत्रीय अस्पताल की डॉ. सुनीता गलोधा का बयान शामिल है, जिन्होंने रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट (प्रदर्श पीडब्लू-6/ए) के आधार पर चिकित्सा-कानूनी प्रमाणपत्र (प्रदर्श पीडब्लू-7/बी) जारी किया था। उच्च न्यायालय ने विवादित निर्णय के अनुच्छेद 10 में डॉ. सुनीता गलोधा के बयान और उपर्युक्त दोनों रिपोर्टों का विस्तार से उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है:

“10. प्रत्येक मामले को अपनी परिस्थितियों पर निर्धारित किया जाना चाहिए और देरी के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को दिए गए तथ्यों पर लागू किया जाना चाहिए। चिकित्सीय साक्ष्य की बात करें तो, हम पाते हैं कि अभियोक्ता की जांच डॉ. सुनीता गलोधा (पीडब्लू-7) ने की थी, जिन्होंने रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट (प्रदर्श पीडब्लू-6/ए) के आधार पर एमएलसी (प्रदर्श पीडब्लू-7/बी) जारी की थी। इस गवाह ने पाया कि अभियोक्ता की चाल सामान्य थी। उसके शरीर के किसी हिस्से पर चोट के निशान नहीं थे। उसने जो कपड़े पहने थे, वे धुले और बदले हुए थे। हालाँकि, जब उसके निजी अंगों की शारीरिक जांच की बात आई, तो अभियोक्ता ने सहयोग नहीं किया। उसने अपनी योनि के अंदर एक छोटी उंगली का सिरा भी नहीं डालने दिया। इसके अलावा उसके निजी अंगों या योनि के स्वाब पर कोई खून या वीर्य नहीं मिला। अभियुक्त को कथित अपराध से नहीं जोड़ता। अभियोक्ता के कपड़ों या योनि के स्वाब पर वीर्य नहीं पाया गया। अंततः यह आधार दिया गया कि वीजा कुमारी के जघन बाल और योनि स्लाइड पर रक्त और वीर्य नहीं पाया गया। स्वाब पर रक्त पाया गया, लेकिन प्रदर्शन में वीर्य

1 रामदास बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2007) 2 एससीसी 170; परमिंदर कौर बनाम पंजाब राज्य, (2020) 8 एससीसी 811; फतेह चंद बनाम हरियाणा राज्य, (2009) 15 एससीसी 543; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम छोटे लाल, (2011) 2 एससीसी 550

नहीं पाया गया। इसके अलावा, पुलिस रजिस्टर में पूछे गए कृत्य के बारे में राय नहीं दी जा सकती क्योंकि लड़की को आरपीएमसी, धर्मशाला भेजा गया है।

10. ऊपर उद्धृत अंश यह स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि अभियोक्ता और उसके माता-पिता ने स्वयं कभी भी चिकित्सा कर्मचारियों के साथ पूरी तरह से सहयोग नहीं किया, जिससे घटनाओं के उनके संस्करण की विश्वसनीयता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यह कानून का एक सुस्थापित प्रस्ताव है कि कथित बलात्कार पीड़िता द्वारा चिकित्सा परीक्षण की अनुमति न देना उनके खिलाफ नकारात्मक निष्कर्ष निकालता है।² हम शिकायतकर्ताओं द्वारा अधिकारियों को दी गई सहायता के पूर्ण अभाव के लिए कोई उचित कारण नहीं बता सकते, सिवाय अदालत के समक्ष उनके विरोधाभासी रुख के। हम इस संबंध में और भी अधिक निःसंदेह हैं क्योंकि उच्च न्यायालय, अभियोक्ता की गवाही पर चर्चा करते हुए, इस अटल निष्कर्ष पर पहुंचा है कि वह मानसिक रूप से विक्षिप्त नहीं थी - यह देखते हुए कि वह जिरह के दौरान प्रश्न और उत्तर को स्पष्ट रूप से समझने में सक्षम थी।
11. अभियोजन पक्ष की आयु के संबंध में, उसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है और अन्यथा सिद्ध भी हो चुका है कि कथित घटना के समय उसकी आयु 19 वर्ष थी। अभियोजन पक्ष ने इस तथ्य का भी विरोध नहीं किया है।
12. हम क्षेत्राधिकार संबंधी उन सीमाओं से परिचित हैं जो सामान्यतः निपटाए गए आपराधिक अपीलों में हस्तक्षेप को प्रतिबंधित करती हैं,³ खासकर जहाँ उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को बरी कर दिया हो। यह भी समान रूप से स्थापित है कि सिवाय इसके कि जहाँ इस न्यायालय को यह पता चले कि उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्यों की पूरी तरह से गलत व्याख्या पर आधारित है, या जहाँ उसके निष्कर्ष इतने विकृत हैं कि उन्हें कायम नहीं रखा जा सकता, केवल तभी बरी करने का निर्णय हस्तक्षेप का आधार बन सकता है। इसके विपरीत, वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने संपूर्ण साक्ष्यों की सूक्ष्मता से जाँच की है और फिर दृढ़ता से यह राय दी है कि वर्तमान अभियुक्त-प्रतिवादी संदेह का लाभ पाने का हकदार है।

2 यौन अपराधों के जवाब में आपराधिक न्याय प्रणाली का आकलन, पुनः (2020) 18 एससीसी 540; डोला बनाम ओडिशा राज्य, (2018) 18 एससीसी 695

3 शाम सुंदर बनाम पूरन, (1990) 4 एस. सी. सी. 731; रमणीकलाल गोकलदास बनाम गुजरात राज्य, (1976) 1 एस. सी. सी. 6; गोसु जयरामी रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2011) 11 एस. सी. सी. 766; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम धर्मेंद्र सिंह, (1999) 8 एस. सी. सी. 325

13. परिणामस्वरूप, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित बरी करने के फैसले में हस्तक्षेप करने से इनकार करते हैं। तदनुसार, अपील खारिज कर दी जाती है।

मामले का परिणाम: याचिका खारिज कर दी गई।

† हेडनोट निधि जैन द्वारा तैयार किए गए

अब्दुल करीम द्वारा अनुवादित